विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५३० | कार्तिक पूर्णिमा | १६ नवम्बर १९८६ | वर्ष १६ अंक ५

धम्म वाणी

सब्बे धम्मा अनत्ताऽति, यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ।।
धम्मपद– २०/७

सभी धर्म अनात्म हैं— ऐसा जब प्रज्ञा से देखता है तो दुःखों से मुक्त हो जाता है । यही विशुद्धि का मार्ग है ।

संवेदना
(८)

कोई व्यक्ति दुखी व्याकुल होता है और नासमझ है तो अपने दुख का कारण बाहर देखता है । बाहर का व्यक्ति, वस्तु, स्थिति, घटना आदि । परन्तु यदि समझदार है तो कारण भीतर देखता है और पाता है कि मैंने अपने मन की निर्मलता खो दी । मन में विकार जगाया इसलिए व्याकुल हुआ । क्रोध, कोप, द्वेष, दुर्भावना, दौर्मनस्यता आदि । वह यह भी समझता है कि यह इसलिए हुआ कि बाहर की कोई बात अनचाही हो गयी अथवा मनचाही नहीं हुई । इसलिए मन मैला कर लिया । वह यदि अधिक समझदार है तो यह समझते देर नहीं लगती कि अनचाही की वजह से क्रोध, द्वेष आदि इसलिए जागे क्योंकि मनचाही के प्रति बहुत राग, तृष्णा, आसक्ति है। और यह भी समझेगा कि मनचाही के प्रति आसक्ति इसलिए है कि "मैं" के प्रति "अहं" के प्रति बहुत गहरा राग है, गहरी आसक्ति है । यह अहंभाव ही है जिसके प्रति जागी हुई आसक्ति इतनी व्याकुलता पैदा करती रहती है। अत्यंत समझदार होगा तो समझेगा कि इस दुःख-सर्जिनी समस्या के सही समाधान के लिए अहं की खोज में लग जाए ।

अहं की खोज भीतर करनी होती है । केवल श्रद्धाजन्य मान्यताओं के आधार पर नहीं, केवल चिंतन-मननजन्य ऊहा-पोह के आधार पर नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभूतियों के आधार पर इस "मैं" की खोज साधक शुरू करता है । आरंभ में स्थूल स्थूल आलंबन के सहारे काम शुरू करेगा । यह घनीभूत स्थूल काया और इसका अनुभव करने के लिए काया पर होनेवाली घनीभूत स्थूल स्थूल संवेदनाएँ— पीड़ा, भारीपन, तनाव, दबाव, गर्मी, पसीना आदि । धीरज के साथ साक्षीभाव से सारे शरीर में इनका निरीक्षण करता जाये तो इनसे भी सूक्ष्म सच्चाइयाँ स्वतः प्रकट होने लगेंगी । शरीर स्कंध का घनत्व टूटता जायेगा । सूक्ष्मतर संवेदनाओं का अनुभव होने लगेगा । जैसे झनझनाहट, सुरसुराहट, तरंगें, पुलकरोमांच, प्रवाह आदि ।

इसी प्रकार ज्यों ज्यों चित्त का और चित्त पर होनेवाली चित्तवृत्तियों का निरीक्षण करेगा तो देखेगा कि इन दोनों का शरीर और शरीर पर होनेवाली संवेदनाओं से गहरा संबंध है । घनीभूत चैतसिक भावावेशीय विकारों का घनीभूत शारीरिक संवेदनाओं से और सूक्ष्म विचार तरंगों का सूक्ष्म शारीरिक संवेदनाओं से, दुखद मनोभावनाओं का दुखद शारीरिक संवेदनाओं से और सुखद मनोभावनाओं का सुखद शारीरिक संवेदनाओं से गहरा संबंध है ।

शरीर, चित्त और चित्तवृत्तियों का वेदनाओं के आधार पर प्रत्यक्ष साक्षात्कार करते करते अन्तरतम तक सच्चाई समझ में आने लगती है । देखता है कि इस मिथ्या अहं याने अस्मिता का भाव किस प्रकार गहराईयों तक छाया हुआ है । जो इस अहं को अप्रिय लगता है उसको दूर करने की चेष्टावाला द्वेष, जो प्रिय लगता है उसे पाने और पा जाय तो समेटे रखने की चेष्टावाला राग, यह अन्तरमानस का अभिन्न अटूट स्वभाव बन गया है । संवेदनाओं के दर्शन से यह सत्य बहुत स्पष्ट होता जायेगा ।

गहरी नींद की अवस्था में भी किसी मच्छर ने काटा । अप्रिय संवेदना हुई । तुरंत द्वेष की प्रतिक्रिया की । उसे उड़ा दिया अथवा मार दिया और दंस के स्थान को खुजलाकर अप्रिय संवेदना दूर कर ली । गहरी नींद में ही चित लेटा है अथवा किसी एक करवट पर लेटा है और शरीर के दबाव से कहीं कोई अप्रिय संवेदना प्रकट हुई कि तुरंत प्रतिक्रिया की । उसे दूर करने के लिए करवट बदली । फिर कुछ देर बाद बदली हुई करवट पर भी दबाव

की अप्रिय संवेदना प्रकट हुई,फिर करवट बदली। और न जाने यों कितनी बार करवटें बदलता ही रहा। प्रातः मौसम की वजह से शरीर पर शीत की संवेदना हुई, उसे दूर करने के लिए पांव के पास पड़ी चादर या कंबल ओढ़ ली। यह सारी हरकतें प्रसुप्त अवस्था में होती ही रहती हैं।

ऐसे ही जाग्रत अवस्था में भी। बैठे बैठे शरीर में कहीं दबाव की संवेदना हुई कि आसन बदला, शरीर हिलाया। कहीं खुजली जागी कि तुरंत खुजलाया। आँखें शुष्क हुईं कि तुरंत पलक झपक कर गीली कर ली। यह सब चलते ही रहता है। अपने आलंबनों में मशगूल रहनेवाला मानस का ऊपरी ऊपरी हिस्सा यह जानता भी नहीं कि भीतर ही भीतर किस प्रकार प्रिय के प्रति राग, अप्रिय के प्रति द्वेष की प्रतिक्रिया का क्रम अबाध गति से चलता रहता है।

संवेदना के आधार पर की गयी विपश्यना इस अंधेरे को दूर करती है। मानस के इस स्वभाव को देखते देखते अनेक सच्चाइयाँ उजागर होने लगती हैं। एक तो यह कि यह सारा शरीर स्कंध, सारे चित्त स्कंध, सारे चैतसिक स्कंध उत्पाद स्वभाववाले हैं और जो उत्पाद स्वभाववाला है वह व्यय स्वभाववाला भी है ही। यह भौतिक शरीर स्थूल घनीभूत लगनेवाला भी और विघटित होते होते सूक्ष्म परमाणुओं का पुंज भी, उदय-व्यय स्वभाववाला ही है। ऐसे ही यह चित्त स्कंध— विज्ञान, संज्ञा, वेदना, संस्कार (जानने, पहचानने, संवेदनशील होने और प्रतिक्रिया करनेवाले) स्कंध उत्पाद-व्यय स्वभाववाले ही हैं। यों ही चित्तवृत्तियाँ भी। इनमें से कौन सा "मैं" है ? किसे "मैं" मानूँ ? कुछ समय के लिए एक भ्रम चलता है कि यह जो विज्ञान है जो जानने का काम करता है, यह अवश्य नित्य, शाश्वत है और यही "मैं" हूँ। पर अन्वेषण, अनुसंधान करते करते यह भ्रम भी दूर होता है। देखता है कि श्रुत-विज्ञान उत्पाद स्वभाववाला है। इसका उत्पाद तभी होता है जब कि कान और शब्द दोनों विद्यमान हों। दोनों ही न हों अथवा दो में से एक का भी अभाव हो तो श्रुत-विज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार चक्षु-विज्ञान की उत्पत्ति आँख और रूप के होने पर, घ्राण-विज्ञान की नाक और गंध के होने पर, जिह्वा-विज्ञान की जिह्वा और रस के होने पर, शरीर-विज्ञान को शरीर और स्पर्शव्य पदार्थ के होने पर और मनो-विज्ञान की मन और मन के विषय चिंतन आदि के होने पर निर्भर करती है। सभी विज्ञान कारणों से ही उत्पन्न और कारणों के न रहने से निरुद्ध हो जाते हैं। सभी उत्पाद-व्यय स्वभाव वाले हैं। सभी अनित्य-धर्मा हैं।

इस प्रकार साधक इन संवेदनाओं के आधार पर स्वानुभूतियों द्वारा समझता है कि जो कुछ भी उत्पन्न होनेवाला है वह अनित्य-धर्मा ही है। यह सत्य साधक को स्पष्ट होता है कि 'सब्बे सङ्खारा अनिच्चा'।

और जो अनित्य है वह वास्तविक सुख देनेवाला कदापि नहीं हो सकता। उससे उत्पन्न सामयिक सुख भंगुर है। अतः उसके नष्ट होने पर दुःख ही जागता है। यों स्वानुभूतियों से यह बात खूब समझ में आती है कि " सब्बे सङ्खारा दुक्खा "।

जो अनित्य है, प्रतिक्षण बदल रहा है, जिसमें शीघ्र गति से उत्पाद-व्यय का क्रम चल रहा है, जिस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है वह शरीर, वह चित्त, वह चैतसिक क्या "मैं" हूँ ? तो समझ में आता है कि व्यवहार जगत के लिए भले "मैं" है परन्तु वस्तुतः "मैं" नहीं है। शरीर और चित्त के सारे धर्म "मैं" नही, मेरे नहीं, मेरी आत्मा नही हैं। "सब्बे धम्मा अनत्ता"।

यह महज दार्शनिक मान्यता की बात नहीं रह जाती। साधक अनुभूतियों के स्तर पर शरीर और चित्त के सारे क्षेत्र का अनुसंधान करता चलता है। इसमें कहीं कुछ "मैं" कहने योग्य नहीं है। इस सच्चाई को अनुभवजन्य प्रज्ञा से जानने लगता है तो अज्ञान दूर होता है, भ्रम-भ्रांति दूर होती है, विकार नष्ट होते हैं, मिथ्या अस्मिताभाव पिघलता है और एक अवस्था आती है जब कि शरीर और चित्त के क्षेत्र का अतिक्रमण हो जाता है और उसके परे की इंद्रियातीत अनुभूति होती है। इंद्रियों के क्षेत्र की अनुभूति में तो यही जाना कि सब अनित्य है, दुःख है। परन्तु इंद्रियातीत का अनुभव होता है तो स्पष्ट होता है कि यह जो इंद्रियो के परे की अवस्था है, शरीर, चित्त और चित्तवृत्तियों की अवस्था से सर्वथा भिन्न है, विपरीत है। यह अनित्य नहीं, नित्य है। परिवर्तनशील नहीं, स्थिर है। अशाश्वत नहीं, शाश्वत है। उत्पादधर्मा नही, अजन्मा है। व्ययधर्मा नहीं, अव्यय है। विनाशधर्मा नहीं, अविनाशी है। क्षयधर्मा नहीं, अक्षय है। मरणधर्मा नहीं, अमृत है। यह दुःख नहीं, परमसुख है। "निब्बाणं परमं सुखं"।

परन्तु अनात्मधर्मा तो यह भी है ही। इस अनंत एकरस अवस्था में भी "मैं" कहने जैसा कुछ नहीं मिलता। यह शरीर और चित्तवृत्तियों के परे की अवस्था भी अहंभाव से शून्य है। इसका धर्म-स्वभाव भी अनात्म ही है। यह मैं नहीं, मेरा नहीं, मेरी आत्मा नही। यह ससीम नहीं, असीम है। सांत नहीं, अनंत है। इसकी कोई परिधि नहीं। तब पूरी तरह समझ में आ जाता है कि इंद्रियों के इस ओर व उस ओर— "सब्बे धम्मा अनत्ता" ही है। यों अहंभाव, अस्मिताभाव पूर्णतया पिघल जाता है तो मुक्त हो जाता है।

आओ साधकों ! बुद्धि विलासीय दार्शनिक मान्यताओं के जंजाल से छुटकारा पाकर इन संवेदनाओं के आधार पर समग्र शरीर और चित्त तथा चित्तवृत्तियों के अनित्यधर्मा क्षेत्र का, स्थूल से सूक्ष्म तक का स्वयं अनुसंधान करके और फिर इनके परे की नित्यधर्मा मक्त अवस्था का स्वयं साक्षात्कार कर लें और अपना मंगल साध लें, कल्याण साध लें !

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.

साधकों के उद्‌गार

इंदौर से श्री मानवमुनि लिखते हैं, " अब आप बिल्कुल स्वस्थ होंगे। मन स्वस्थ है तो शरीर की वेदना कितनी अनित्य है इसका साक्षात्कार आपको हुआ। यह विपश्यी साधकों के लिए एक प्रेरणादायक घटना है। क्योंकि शांत चित्त से सहन किए और समताभाव से द्रष्टा बनकर देखते रहे।

आजका मनुष्य तो बाह्य भौतिक चकाचौध में मकड़ीके जाले में फंसता जा रहा है। इससे बाह्य क्षणिक सुख मिल सकता है पर आन्तरिक सुख के बिना अशांति ही होती है। विज्ञानयुग में आत्म-मार्जन की शोध विपश्यना से ही संभव है, जिससे मनुष्य स्वयं आत्मानुशासित हो जाता है। नैतिक जीवन का नवनिर्माण होता है। सरकार की विकास-योजनाएं बाह्य होती हैं पर यदि मानव का नवनिर्माण करना है तो उच्च शिक्षा-केन्द्रों पर विपश्यना का एक अनिवार्य वर्ग हो तो राष्ट्र के भावी नागरिक विध्वंस के बजाय नव-निर्माण करेंगे, सुसंस्कारी भारत के नागरिक बनेंगे। पंजाब जैसी समस्या का समाधान विपश्यना साधना से हो सकता है और आतंकवादियों का भी जीवन-परिवर्तन हो सकता है। हम देखते हैं विपश्यना केन्द्र में साधक-निवास पर ताले नहीं लगते। यहाँ राम-राज्य के वास्तविक रूप का दर्शन होता है। क्योंकि यहाँ किसी भी प्रकार से भेद नहीं। समताभाव और मौन साधना से शांति प्राप्त होती है।

विपश्यना साधना से मानव जीवन में नयी चेतना, स्फूर्ति आती है। जीवन जीने की कला सीख जाता है। खान-पान में परिवर्तन के साथ संयममय जीवन बन जाता है। बाह्य वस्तुएं उसे आकृष्ट नहीं कर सकती। यदि साधक का मन सुदृढ़ हो, संकल्प-शक्ति जागृत हो, विपश्यना शिविर के बाद भी नियमित ध्यान करता रहे तो आत्मीय सुख की अनुभूति होती हो है। रूढ़िवादी परंपरा से मुक्त हो जाता है। इससे पूर्ण शांति मिलती है। इसलिए कहता हूं कि यदि राष्ट्र में शांति स्थापित करनी है तो राष्ट्र के नेताओं को विपश्यना ध्यान का अभ्यास करना होगा।

मेरा नियमित ध्यान चाहे प्रवास में रहूं, चाहे आश्रम में, प्रातः व रात्रि सोने के समय चलता है, इससे पूर्ण शांति की अनुभूति होती है!"

⁂

बम्बई के पत्रकार श्री गजानन जोहारी लिखते हैं, " यद्यपि आप से मेरा प्रत्यक्ष परिचय नहीं है पर गत २१ अक्टूबर, ८५ के इगतपुरी के शिविर में सम्मिलित होकर "विपश्यना साधना" का लाभ उठाया। प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

वैसे तो नाम-साधना करता ही था, पर आध्यात्मिक साधना "विपश्यना" का अनुभव अभूतपूर्व था। मनःशांति तो मिली ही, आरोग्य मे असाधारण सुधार हुआ।

आजकल घर में सुबह और शाम तथा कभी कभी रात के समय विपश्यना साधना में लीन होता हूं।

⁂

नागपुर के भीमराव कुंभारकर ने लिखा है, " पांच शिविरों में भाग लेने के बाद छठवां शिविर मेरे खुद के घर में किया। कार्यक्रम अन्य शिविर जैसा ही रखा। शाम को प्रवचन के समय ४-५ अन्य जिज्ञासु भी आ जाते थे। मेरे शिविर के कमरे में किसी को भी आने की मनाई थी। मैंने पूर्ण मौन और अष्टशील का कड़ाई से पालन किया।

इस शिविर में ध्यान की कई बातें समझ में आईं। आनापान में सूक्ष्मता बढ़ी, अष्टांगिक मार्ग का अर्थ अधिक समझ में आया। मानसिक विश्लेषण स्पष्ट हुआ। सबसे ज्यादा अनित्य, दुःख, अनात्म व अशुभ का बोध बढ़ने लगा है। समता व साक्षीभाव पुष्ट होने में मदद मिली। पूरे समय उत्साह बना रहा। बेचैनी, आलस्य तथा तन्द्रा से अलग रहा। कुछ दिक्कतें भी आयीं पर आपके आशिर्वाद से स्वतः सुलझ गयीं। आगे भी ऐसे स्वयं-शिविर लेते रहने का मानस दृढ़ हुआ है। भवतु सब्ब मंगलं"।

⁂

अमलनेर (जळगांव) का साधक ईश्वरलाल वर्मा अश्रुपूरित हर्षोद्‌गार प्रकट करते हुए लिखता है, " बात यह हुई कि शिविर के बाद इगतपुरी से ७ वें दिन की प्रवचन की कैसेट और एक पुस्तक " धर्म ज्योति " खरीदकर चला। नासिक से पुस्तक पढ़ना शुरू किया तो सिर्फ २०-२५ साखियां (दोहे) जो कि पू. गुरुजी के हृदयोद्‌गार से लिखी गयी हैं, ही पढ़ पाया। पढ़ रहा था और एक एक शब्द पढ़ते पढ़ते आंखों से पानी बह रहा था। रोके नहीं रुकता था। नासिक से अमलनेर तक पूरे पांच घंटे का समय कब बीत गया, पता ही न चला। उन साखियों ने इतना रुलाया कि हृदय हल्का हो गया और बहुत प्रसन्नता आ गयी। अब घर में भी जब इन्हें पढ़ता हूं तो गला भर आता है, आंखों से झरना फूट पड़ता है। गुरूजी! कृपया बतायें कि यह मुझे क्या हो गया?

विपश्यना का अनमोल रतन आपसे पाकर मुझे परम संतोष मिला है। समता में रहने का मंत्र मिल गया, गांठें खोलने का तरीका मालूम हो गया, नई गांठें नहीं बांधने का सूत्र हाथ लगा। मेरा अहोभाग्य है कि धर्मचक्र पर चलने का रास्ता मिला। सब का मंगल हो!"

⁂

कलकत्ता की श्रीमती अनुसूया उदानी लिखती है, " विपश्यना करने के बाद चित्त प्रसन्न रहता है, खूब शांति रहती है। रोज सुबह आधा घंटा और रात को आधा घंटा विपश्यना चालू है। चक्षु से पानी बहता है। निर्भय होकर जीवन जीने की हिम्मत बढ़ी है। मतलब भय कम होता जा रहा है। अन्याय भी सहने की (समताभाव) शक्ति पायी हूँ। पहले अन्याय होने पर बहुत गुस्सा आता था। अब सोच लेती हूँ कि अनजान मनुष्य अन्याय करता है, दया का पात्र है। मेरी प्रवृत्तियाँ दिन-प्रतिदिन अच्छी हो रही हैं।

कोई दुखद घटना होते ही विपश्यना कर लेती हूँ या आपका अनमोल सूत्र याद कर लेती हूँ--'Nothing is permanent' सुख-दुख आता है और जाता है। इससे समताभाव जारी रहता है। सब के प्रति प्रेम और करुणा की भावना बलवान हो रही है। आज पत्रिका मिली, पढकर खुश हुई"।

⁂

अजमेर से श्री नृसिंहदेव अरोड़ा लिखते हैं, " मानव जीवन के निर्माण के लिए जितने साधनों का अनुष्ठान करना होता है उनमें सर्वोत्तम साधन "विपश्यना" है। यह बात अपने अनुभव से जाना है। इसके नियमित अभ्यास से जीवन का उत्थान होता चला जाता है। साधक का चित्त फूल की भांति खिला रहता है। नम्रता, दया, प्रसन्नता एवं आह्लाद जीवन के अभिन्न अंग बन जाते हैं। अनेकों निराश-हताशों को आशा का जीवन मिलता है। सैकड़ों गिरे हुए उठते हैं, डाकू ऋषि बन सकते हैं। भूले-भटके सच्चा मार्ग प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं। वास्तव में रोगी को निरोगी बना देना, पतित को आर्य (देवतातुल्य) बना देना, अशांत व क्रोधी को शांत व सुखी बना देना, संसार के बंधनों में फँसे हुए साधक को जीवन-मुक्ति के आनंद का अनुभव करा देना विपश्यना का ही कार्य (धर्म) है। इसके अभ्यास द्वारा साधक स्वयं तो कृतकृत्य होता ही है, समाज व परिवार के लिए भी सुख-शांति का कारण बनता है।....."

विशेष सूचनाएँ

१) भावी शिविर कार्यक्रमों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है इसलिए वह सूची इस अंक के साथ नहीं भेज रहे हैं।

२) शिविरमें शामिल होनेसे पूर्व नियमावली पढ़ें और आवेदन पत्र भेजकर अपना नामाकंन करा लें।

३) केन्द्रों में होनेवाले सहयक आचार्य के शिविरों में आवेदन-पत्र तो भेजना होगा परन्तु स्वीकृति-पत्र मिले बिना भी आ सकते हैं।

४) किसी नए भिक्षु/संन्यासी के लिए या जिसे कोई शारीरिक या मानसिक रोग हो या जो बच्चों के साथ आते हो अथवा परस्पर परिचित व्यक्ति एक साथ आते हों तो उनके लिए पूर्व स्वीकृति लेना अनिवार्य है।

५) *पू. गुरुजी के सान्निध्य में आयोजित शिविरों में बिना पूर्व स्वीकृति प्राप्त किए किसी भी व्यक्ति को लेना संभव नहीं होगा।

दूहा धरम रा

अहंकार ममकार स्यूं, मन होवै मगरूर।
अकड़न जकड़न ही बढै, दुख जागै भरपूर ।।

जितनो जितनो द्रढ़ हुवै, मनचाही सूं प्यार।
अनचाही सूं द्रढ़ हुवै, उतनो उतनो खार ।।

राग द्वेस जगता र वै, प्रिय अप्रिय संयोग।
मिलै न चैन न सांति सुख, दुख ही दुख को भोग ।।

कारण सूँ निरमित हुवै, जो कुछ ईं संसार।
कारण टूट्याँ नस्ट हुवै, यो भंगुर आधार ।।

काया चित्त अनित्य है, पल पल पलटो खाय।
ईं भंगुर परपंच मँह, थिर सास्वत कछु नाय ।।

उदय अस्त होतो र वै, सतत् सकल संसार।
धूप छाँह की फिरकणी, ईं सूं क्याँ को प्यार ?

दोहे धरम के

अपने दुख संताप का, बाह्य न कारण कोय।
जब जब मन मैला करे, तब तब व्याकुल होय ।।

जितनी हों आसक्तियाँ, जितने हों चिपकाव।
उतने गहरे दुःख का, बनता जाय बनाव ।।

नश्वर के प्रति दृढ़ हुआ, जितना गहन लगाव।
बिछुड़न बेला दुःख के, उतने गहरे घाव ।।

जगत सतत् गतिमय रहे, ध्रुव अविचल कब होय ?
इस अनित्य से राग कर, मन दुखिया ही होय ।।

काया चित्त अनित्य है, इसमें सार न कोय।
मैं मेरे की भ्रांतियाँ, दुख उत्पादक होंय ।।

जागे विमल विपश्यना, दुःख होंय सब दूर।
राग द्वेष से मुक्त हो, शांति मिले भरपूर ।।

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७
की मंगल कामनाओ सहित

विपश्यना विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष ८६
कार्तिक पूर्णिमा * मुद्रण स्थान : विपश्यना प्रेस, धम्मगिरि, इगतपुरी. दूरभाष : ७६, १७६ * November 86

वार्षिक शुल्क रु. १०/–
आजीवन शुल्क रु. १००/–

'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71
पोस्टल रजि. नं. NS(M) 16/86

Licence No. NS 18
to post without prepayment

प्रेषक :
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि इगतपुरी–४२२४०३
(जि. नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)